शोध मंथन Vol. XII No.IV Oct.-Dec. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

सरदार पटेल और साम्प्रदायिक सद्भाव

प्राप्तिः 11.11.2021
स्वीकृतः 25.12.2021

डॉ० माईकल
स्नातकोत्तर गांधी विचार विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
बिहार
ईमेलः *drmaikalbh@gmail.com*

सारांश

वल्लभभाई झावेरभाई पटेल जो सरदार पटेल के नाम से लोकप्रिय थे, एक भारतीय राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने भारत के प्रथम उप–प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया। वे एक भारतीय अधिवक्ता और राजनेता थे, जो भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता और भारतीय गणराज्य के संस्थापक पिता थे जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए देश के संघर्ष में अग्रणी भूमिका निभाई और एक एकीकृत, स्वतन्त्र राष्ट्र में अपने एकीकरण का मार्गदर्शन किया। राजनीतिक और कूटनीति क्षमता का परिचय देते हुए स्वतन्त्र भारत को एकजुट करने का असाधारण कार्य बेहद कुशलता से संपन्न करने के लिए जाने जाते रहे सरदार पटेल। अपनी इसी इच्छाशक्ति व दृढ मनोबल के दम पर उन्होंने देश की आजादी के बाद एक भारत बनाने का ऐसा मुश्किल काम कर दिखाया जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। भारत के राजनीतिक इतिहास में सरदार पटेल के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता है। देश की आजादी के संघर्ष में उन्होंने जितना योगदान दिया उससे ज्यादा योगदान उन्होंने स्वतन्त्र भारत को एक करने में दिया। सरदार पटेल राष्ट्रीय एकता के बेजोड़ शिल्पी व नए भारत के निर्माता थे। देश के विकास में सरदार वल्लभभाई पटेल के महत्त्व को सदैव याद रखा जाएगा। सरदार पटेल को भारत का लौह पुरुष कहा जाता है देशी रियासतों का विलय स्वतन्त्र भारत की पहली उपलब्धि थी और निर्विवाद रूप से पटेल का इसमें विशेष योगदान था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को वैचारिक एवं क्रियात्मक रूप में एक नई दिशा देने के कारन सरदार पटेल ने राजनीतिक इतिहास में एक गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त किया। उनके कठोर व्यक्तित्व में संगठन कुशलता, राजनीति सत्ता तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति अटूट निष्ठा थी, जिस अदम्य उत्साह, असीम शक्ति से उन्होंने एकीकृत देश की प्रारम्भिक कठिनाइयों का समाधान किया भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उनका महत्वपूर्ण योगदान था।

प्रस्तावना

भारत के प्रथम गृहमंत्री लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल पर उनके जीवन के अंतिम वर्षों में और उनकी मृत्यु के बाद तो और ज्यादा यह आरोप चस्पा होता गया है कि, उनकी सोच में मुस्लिम–विरोध का पुट मौजूद था। भारत के वरिष्ठ विचारक तथा शीर्षस्तरीय राजनीति के अनुभवी डॉ. रफीक जकारिया ने अपने महत्वपूर्ण शोध–विश्लेषण में बताया है कि देश–विभाजन के दौरान हिन्दू शरणार्थियों की करुण अवस्था देखकर पटेल में कुछ हिन्दू–समर्थक रुझान भले ही आ गए हों,

पर ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता, जिससे यह पता चले कि उनके भीतर भारतीय मुसलमानों के विरोध में खड़े होने की कोई प्रवृति थी। देश में सत्ता–हस्तांतरण के समय मुसलमान नवाबों के व्यवहार ने भी भारतीय मुसलामानों की निष्ठा के बारे में सन्देश बढ़ाने का काम किया था। सत्ता के पापों के साये उनके सहधर्मियों पर पड़ रहे थे। नवाबों द्वारा शासित राज्यों की अधिसंख्य आबादी हिन्दू थी और वे चारों ओर से भारतीय क्षेत्र से घिरे हुए थे। अंग्रेजों का आधिपत्य समाप्त होने के बाद इन राज्यों के शासकों ने यों तो स्वतन्त्र होने का सपने देखना शुरू कर दिया था या फिर मुसलमान होने के नाते पाकिस्तान के साथ जुड़ने की बात सोचने लगे थे। झूठे आश्वासन देकर जिन्ना ने उन्हें गुमराह किया। सरदार पटेल की दृढ़ इच्छाशक्ति एवं राष्ट्रीय एकीकरण के परिणामस्वरूप देश के लगभग एक–तिहाई हिस्से में फैली 562 छोटी–बड़ी रियायतों का भारतीय संघ में विलय सचमुच बहुत बड़ा काम था। यह चमत्कार करके सरदार ने अपने लिए 'भारतीय बिस्मार्क' की उपाधि अर्जित की थी।

पटेल उन महत्वपूर्ण स्वतन्त्र भारत के निर्माताओं में से एक हैं, जिनकी गणना नेहरू व गांधी के साथ की जाती है। इन तीनों का व्यक्तित्व अलग–अलग ढाँचे में ढला हुआ था। इसके बावजूद भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करने की आकांक्षा ने तीनों को एक साथ जोड़ा। पटेल में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन 1916 के बाद महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है और इसके परिणामस्वरूप 1921 में उन्हें गुजरात प्रांतीय काग्रेस समिति का अध्यक्ष चुना गया। पटेल भले ही यह मानते हों की 'प्रकृति धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करती।'[1]

लेकिन हिन्दू–मुसलमान संबंधों के प्रश्न पर गांधी, नेहरू और पटेल के दृष्टिकोणों में एक अंतर था। गांधी और नेहरू दोनों के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। इसे भारत की स्वतंत्रा का आधार मानते थे। पटेल का मानना था कि जब तक अंग्रेजों का शासन रहेगा, यह एकता संभव नहीं है। इसलिए, प्रारम्भ से ही पटेल अपनी सारी ताकत ब्रिटिश राज खिलाफ लड़ने में लगाई, साम्प्रादायिक एकता का स्थान उनकी दृष्टि में इसके बाद था। पर, वे इसके विरुद्ध नहीं थे, साम्प्रादायिक समन्वय के लिए भी वे लगातार प्रयत्नशील रहे, हाँ सामाजिक दृष्टि से वे स्वयं को हिन्दुओं में अधिक सहज अवश्य अनुभव करते थे।[2]

एक तरफ पटेल कहते हैं कि, 'प्रकृति धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करती।' वही 1937 में जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना के बाद उनका दृष्टिकोण बदलने लगा। विभाजन और उनके परिणामों ने इस परिवर्तन को प्रखर बना दिया। इनके कुछ सहयोगी उन्हें खुलेआम सांप्रादायिक कहने लगे। ऐसा कहने वाले स्वतंत्रता संग्राम के दो महानतम सेनानी मौलाना आजाद और जयप्रकाश नारायण भी सम्मिलित थे।[3] और इससे अहमदाबाद अधिवेशन (1921) में कहते हैं कि, "हमने पूरी ईमानदारी और दृढ़ता के साथ अपनी कमजोरी पर विजय पाने की कोशिश की है। अगर किसी प्रमाण की आवश्यकता है तो यह है– हिन्दू–मुस्लिम एकता।"[4] भारतीय संविधान में उल्लेखित हिन्दू–मुस्लिम एकता या साम्प्रादायिक सद्भावना के पुरे मसौदे का श्रेय पटेल को जाता है। इसमें 1931 का कांग्रेस का काराची वार्षिक अधिवेश मिल का पत्थर साबित हुआ। इस अधिवेशन में नागरिकों के मूल अधिकारों का एक मसविदा स्वीकार हुआ था, जो बाद में स्वतन्त्र भारत के संविधान में सम्मिलित किया गया। सरदार इस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए थे। वे कहते हैं कि, "सबसे पहले हिन्दू–मुस्लिम या साम्प्रादायिक एकता का सवाल आता है– इसके अलावा पटेल

मुसलामानों को यह आश्वासन देते हैं कि उन्हें 'पूर्णतया संतुष्ट' किए बिना भारत के भावी संविधान में कुछ भी सम्मिलित नहीं किया जाएगा''[5]।

इसके बाद नवनिर्वाचित अध्यक्ष ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा था, "एक हिन्दू के नाते में अपने पूर्वर्त्ती अध्यक्ष का फार्मूला स्वीकार करते हुए अल्पसंख्यकों को स्वदेशी कलम और कागज देता हूँ, ताकि वे अपनी मांग लिख सकें। मैं उनका अनुमोदन करूंगा। मैं जानता हूँ कि यही सबसे तेज तरीका है। पर इसके किए हिन्दुओं में साहस होना जरुरी है। हम दिलों की एकता चाहते हैं, कागज के टुकड़ों को जोड़कर बनी वह एकता नहीं, जो जरा–से तनाव से टूट जाए। वैसी एकता तभी आ सकती है जब बहुमत अपना सारा साहस जुटाकर अप्ल्मत की जगह लेने को तैयार हो। यही सबसे समझदारी की बात होगी।"[6]

उक्त कांग्रेस के अधिवेशन की एक और विशेष बात अपने पठानों को लेकर ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेने वाले खान अब्दुल गफ्फार खान की उपस्थिति थी। पठान स्वभाव से उग्र होते हैं, पर बादशाह खान के नेतृत्व में उन्हेंओं हिंसा का त्याग कर गांधीजी द्वारा बताये गए अहिंसक रास्ते से संघर्ष करना स्वीकार किया। उनके संगठन खुदाई खिदमतगार को सारे देश के स्वतंत्रता प्रेमियों की प्रशंसा प्राप्त हुई और उनके नेता सरहदी गांधी कहा गया। कांग्रेस के अध्यक्ष के नाते पटेल ने खुले दिल से उनका स्वागत किया और अधिवेशन में उन्हें सम्मानित स्थान प्रदान किया। जब उन्होंने खान अब्दुल गफ्फार खान को प्रतिनिधियों के समक्ष हिन्दू मुस्लिम एकता के शानदार उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया तो सम्मलेन तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा था।[7] लोगों ने सरदार पटेल की भूमिका को साम्प्रदायिक सद्भाव के रूप में सराहा था। भारत में साम्प्रादायिक मतभेद के लिए बल्लभभाई पटेल को विश्वास हो गया कि अब तक अंग्रेजों का शासन रहेगा, कांग्रेस और लीग के बीच किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सकता। जिन्ना को अंग्रेजों ने बनाया था। पहले जिन्ना उनकी धुन पर नाचते थे, अब वे जिन्ना की धुन पर नाच रहे थे। पटेल ने कहा था ब्रिटिश सरकार "उस बन्दर की तरह है जिसके पास दो बिल्लियां अपना झगड़ा लेकर गयी थीं। यह सही है कि और किसी भी जगह की तुलना में हमारे देश में राजाओं की संख्या बहुत बड़ी है। हम यह भी मानते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानों में मतभेद हैं। हाँ, हम यह भी स्वीकार कर सकते हैं कि इस देश में संपत्ति की कमी नहीं। पर, यह सब कुछ हमारा है या आपका? हमारे सबसे झगड़ों का कारण आप हैं।"[8] डॉ. जकारिया लिखते हैं कि, मैं नहीं समझता कि इस्लाम के सिद्धांतों को को समझाने के लिए उन्होंने कभी कोई किताब पढ़ी होगी? इस्लाम के प्रति उनकी सोच मौलाना मोहम्मद अली, एस. ए. अंसारी और मौलाना आजाद से बनी। इस्लाम के बारे में उन्होंने जो कुछ जाना, वह अपने मुसलमान संपर्कों की बदौलत। इनमें से बहुत–से ऐसे थे जिन्हें सच्चा प्रतिनिधि अथवा मुसलमान सिद्धांतों को अनुगामी भी नहीं कहा जा सकता।[9]

विभाजन से गांधी और नेहरू के सामान पटेल भी दुखी थे। उन्होंने यह कहकर अपने को सांत्वना दी कि बीमार अंग को काट देना ही उचित था। लेकिन, पटेल इस तथ्य से नहीं उभर सके कि विभाजान गलत था। यह इस वास्तविकता को नष्ट नहीं कर पाया कि "हम एक थे और अविभाज्य थे।" 8 अगस्त, 1947 को उन्होंने प्रेस को दिए एक वक्तव्य में कहा था– आप समुन्द्र या नदी के पानी को नहीं बाँट सकते। मुसलमानों की जड़ें उनके धर्म–स्थान और उनके केंद्र यहाँ हैं। मैं जनता हूँ कि वे पाकिस्तान में क्या कर सकते हैं। वे जल्दी ही हमारे पास लौटेंगे।[10] लेकिन उनका यह वक्तव्य अभी तक अखबार पर ही छापा है।

''स्वतन्त्र भारत में एक उप–प्रधानमन्त्री और गृहमंत्री के नाते भारत में फैली साम्प्रदायिक घृणा व गुस्से के विस्फोट को नियंत्रित करने का दायित्व सरदार पटेल के कन्धों पर था। पटेल के पास एक अविकसित और टूटे हुए राज्य का ढाँचा था। पुलिस, सेना, जनता, सत्ता और धन सभी अपनी राग में गा रहे थे।" 23 अक्तूबर 1947 को जामा मस्जिद के प्राचीर से शुक्रवार को एकत्र हुए लोगों को संबोधित करते हुए उन्होंने पीड़ा और आक्रोश से रुंधे गले से मुसलमानों से पूछा था "आप लोगों के चहरे पर दिख रही परेशानी, दिलों में चाई मुर्दनी मुझे पिछले कुछ सालों की वारदातों की याद दिला रही है, आप को याद है? मैंने आपको आवाज लगाई थी, आपने मेरी जबान काट दी। मैंने अपनी कलम उठायी, आप लोगों ने मेरा हाथ काट दिया। मैंने आगे बढ़ना चाहा, आपने मेरी टांगें काट दीं। मैंने मुड़ने की कोशिश की, आपने मेरी पीठ घायल कर दी। पिछले सात सालों में जब–जब राजनीती का घिनौना खेल चरम पर था, मैंने ऐसे हर खतरनाक मोड़ पर आप लोगों को खबरदार करने की कोशिश की।[11]

पटेल ने हर परिस्थिति में धैर्य बनाए रखा। पटेल के निधन से दो माह पूर्व 1950 में हैदराबाद में दिए गए अपने भाषण में वह कहते हैं कि, 'पुलिस की निगरानी से बचाकर लायकअली के विमान द्वारा कराची चले जाने की नाटकीय घटना पर शहर के कुछ मुसलमानों ने खुशियाँ मनायीं। स्थानीय मुसलमानों द्वारा मनाई गयी इसी खुशी के सन्दर्भ में सरदार ने उनके अनुचित व्यवहार पर नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा था, मुझे यह शक होना स्वाभाविक है कि यहाँ के मुसलमान भारत के साथ अपना भविष्य नहीं जोड़ रहे हैं। उनकी इस बात को सभी भारतीय मुसलमानों की आलोचना न मान लिया जाए, यह सोचकर पटेल ने तत्काल कहा था मैं जनता हूँ कि जब गांधी की हत्या हुई थी तो कुछ हिन्दुओं ने भी इसी तरह खुशियाँ मनाई थीं। मैं सिर्फ इस बात पर जोर देना चाहता हूँ, जब तक दोनों समुदायों के मन से यह राक्षसी तत्व नहीं निकल जाता, वास्तविक शान्ति नहीं हो सकती।[12] साथ ही उन्होंने हिन्दुओं को चेतावनी दी कि देशद्रोह मुसलमानों के साथ निबटने का काम उनका नहीं है। सरकार के हाथ इस काम के लिए सक्षम हैं। उन्होंने अपने धर्मबंधुओं से अपील की कि वह मुसलमानों पर अविश्वास करना छोड़ दें। उन्होंने कहा "अगर आप यह समझते हैं कि उनके मुसलमान होने के कारण आप निष्ठावान मुसलमानों को लगातार परेशान करते रहेंगे, तो हमारी स्वतंत्रता सार्थक नहीं है। विभाजन के समय (1947) पटेल के कुछ भाषणों की सुर्खियाँ अखबार में लगाता छपती रहीं। उनको यहाँ देना अप्रासंगिक नहीं होगा। उन्होंने मुसलमानों से कहा था जो पाकिस्तान जाना चाहते हैं, वे वहां जाकर शान्ति से रह सकते हैं। हम यहाँ अपने लिए शान्ति से रहना चाहते हैं। पटेल ने इस बात के लिए भी मुसलमानों की आलोचना की कि उन्होंने इसी शहर में विनाशकारी राष्ट्र–सिद्धांत की नींव राखी थी और यह पाचार किया था कि हिन्दुओं एवं मुसलमानों में कुछ भी समानता नहीं है। पटेल ने बड़े–कड़े शब्दों में उन्हें पृथक्तावादी मानसिकता छोड़कर हिन्दुओं तथा अन्यों के साथ एक ही नाव में रहना एवं साथ–साथ डूबना या तैरना सीखने का आह्वान किया था। "मैं आप लोगों से स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि आप दो घोड़ों की सवारी नहीं कर सकते। जो आपको पसंद हो, वह घोड़ा आप चुन लें।[13] इस भाषण को बहुत प्रचार मिला था और भारत के अधिसंख्य पत्रों एवं पत्रिकाओं ने इसकी प्रशंसा की थी। हिन्दू नेताओं ने भी भारी सराहा था। पर इस भाषण से आजाद नाराज थे, नेहरू परेशान और गांधी दुखी। मुसलमानों के प्रति पटेल के व्यवहार में आये परिवर्तन से ये तीनों चिंतित थे।

गांधी की हत्या के बाद पटेल बहुत नरम हो चुके थे, उन्होंने निर्णय किया कि किसी मुद्दे पर उनके विचार भले कुछ भी हों, वे नेहरू का साथ देगें। नेहरू नेता थे, अतः उनकी बात मानी जानी चाहिए–संकट और अनुशासन का तकाजा था कि पटेल यही करते। इसी का परिणाम था कि उन्होंने राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगाना स्वीकार कर लिया।

नेहरू के प्रति पटेल की निष्ठा की सबसे बड़ी परीक्षा तब हुई थी, जब पाकिस्तान ने हजारों हिन्दुओं को पूर्वी बंगाल से धकेला था। वर्ष 1948 के दिसंबर माह में जयपुर में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में पटेल ने पाकिस्तान को चेतावनी दी "यदि उसने हिन्दू शरणार्थी को, विशेषकर पूर्वी पाकिस्तान से, भारत में भेजना रोका नहीं तो हमारे पास उतने ही मुसलमानों को भेजने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचेगा।[14] यह एक तरह से पाकिस्तान को इस बात की चेतावनी थी कि वह सभ्य तरीके से पेश आये। पर पटेल के विरोधी उन पर टूट पड़े, एक बार फिर उन्हें भारतीय मुसलमानों का शत्रु कहकर उनकी आलोचना शुरू कर दी गयी। जूनागढ़ के नवाब कुछ सनकी किस्म के थे। यह जानते हुए भी कि उनकी प्रजा में 20 प्रतिशत से अधिक हिन्दू हैं एवं उनकी रियासत भारत एवं पडोसी हिन्दू रियासतों से घिरी हुई है। उन्होंने पाकिस्तान में विलय की घोषणा कर दी। यह कार्य उन्होंने जिन्ना के उकसाने पर किया था। पाकिस्तान की भूतपूर्व प्रधानमन्त्री बेनजीर भुट्टो के दादा तब जूनागढ़ के दीवान थे। उन्होंने रियासत को भारत से पृथक् रखने की बहुत कोशिश की, पर वे इसमें बुरी तरह असफल रहे। 20 फरवरी 1948 को जनमत संग्रह करवाकर जूनागढ़ के भारत में विलय पर जनता की मुहर लगा दी गयी। जूनागढ़–यात्रा के दौरान सरदार ने घोषणा की कि महमूद गजनवी द्वारा तोड़े गए सोमनाथ के मंदिर का फिर से निर्माण कर उसे पुराना गौरव प्रदान किया जाएगा। कुछ मुसलमानों ने सोमनाथ के मंदिर के जीर्णोद्धार किया था। इनमें से एक ने निम्न शेर लिखा था, जो एक प्रमुख पत्र में छापा थाः

फिर बनाया जा रहा है सोमनाथ
इक नया महमूद फिर आने को हैं।

अधिकांश मुसलमानों द्वारा इस शेर की व्यापक निंदा हुई। कुल मिलाकर उर्दू अखबारों ने इसे 'शैतानीभरा' एवं 'भड़काऊ' कहकर इसकी आलोचना की थी।[15]

भारतीय मुसलमानों ने स्वतन्त्र भारत में प्रतिष्ठित पद प्राप्त किए। लेकिन आखिर में कई लोग पाकिस्तान चले गए। ऐसे प्रतिष्ठित नामों में एक नाम प्रख्यात शायर जोश महिलावादी थे जिन्हें 'विद्रोह का शायर' भी कहा जाता है। पाकिस्तान में उर्दू भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित किया गय। पटेल पर दबाव बराबर बना रहा कि वे संस्कृत और हिंदी मिश्रित भाषा का उपयोग करें। लेकिन पटेल इसके खिलाफ थे। पटेल ने प्रकाशन विभाग को, जो कि उनके अधीन था, प्रथम श्रेणी की कई पत्रिकाएँ निकालने का निर्देश दिया, जो पाकिस्तान की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका के समकक्ष हो। इस तरह जन्म हुआ था नई मासिक पत्रिका 'आजकल' का, जिसके पहले संपादक जोश मलीहाबादी थे। पत्रिका ही अंक की शुरुआत के साथ उर्दू पत्रकारिता में अपना अद्वितीय स्थान बना दिया। जोश का नाम सरोजिनी नायडू ने बताया था। इस पत्रिका के लिए जोश काफी उत्साहित थे। उन्हें पारिश्रमिक भी अच्छा खासा मिलता था और वे प्रसन्न थे। एक दशक तक उन्होंने 'आजकल' का सम्पादन किया। परन्तु अचानक पुरे भारत को आश्चर्य में डालते हुए वे चाँद लाभ के लिए पाकिस्तान चले गए। इससे पटेल आहात हुए, जबकि जोश का अन्त पाकिस्तान में बहुत दयनीय स्थिति में गुजरा।

समाजवादी चिन्तक डॉ. राममनोहर लोहिया ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'गिल्टी मैन ऑफ इंडिया पार्टीशन' में लिखा है, 'राजनीतिक प्रेरणा की दृष्टि से सरदार पटेल निस्संदेह उतने ही हिन्दू थे जितने मौलाना आजाद मुसलमान।"[16] पर, आजाद अपनी भावनाओं को छिपा सकते थे। अपनी बात पर अदने के बजाय उन्होंने पीड़ा भोगी। जैसा कि पटेल अकसर कड़वा सच बोल देते हैं। शब्दों को घुमा–फिराकर कहने का उनका स्वभाव नहीं हैं। जयप्रकाश नारायण को उनके बारे में अपना विचार बदलना पड़ा था। पटेल के खिलाफ लगाया गया सांप्रदायिक पूर्वाग्रह का आरोप उन्होंने बीस साल बाद वापस लिया था। उन्होंने स्वीकार किया था कि पटेल के बारे में उनका आकलन गलत था। अपनी पुस्तक 'ब्लिज वाज इट इन दैट डांन' में 'मीनू मसानी' ने सरदार का संतुलित चित्रण किया है। जे. पी. व अन्य समाजवादियों के साथ मीनू मसानी श्री पटेल की प्रतिक्रियावादी एवं पुरातनपंथी बताने वालों में सबसे आगे थे। पटेल बहुत प्रतिभाशाली एवं कुशाग्रबुद्धि नहीं थे, न ही वे कोई बड़े स्वप्नाद्रष्टा थे। वे किसी भी दृष्टि से बौद्धिक नहीं थे और इस प्रजाति के किसी गुण–दोष से ग्रस्त भी नहीं थे। यूसुफ मेहर अली ने एक बार कहा था कि पटेल को किसी कल्चर के बारे में यदि कुछ पता था तो वह एग्रीकल्चर (कृषि) है। सरदार की जबान भी बहुत तीखी थी।[17]

संविधान सभा में समिति की सर्वसम्मत रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए सरदार ने हिन्दुओं से आग्रह किया कि यह वह पवित्र विश्वास है जो अल्पसंख्यकों ने उनमें व्यक्त किया है और हिन्दुओं का दायित्व है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि इसका पूरा पालन हो। उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि "असंतुष्ट अल्पसंख्यक बोझ और खतरा होते हैं। अतः हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिय, जिससे अल्पसंख्यकों की उचित भावनाओं को ठोस पहुंचे। उन्होंने कहा– यह बहुसंख्यक समुदाय का दायित्व है कि अपनी उदारता से वह अल्पसंख्यकों में विश्वास की भावना पैदा करे। इसी तरह अल्पसंख्यक समुदाय का भी यह दायित्व है कि वे अतीत को भुला दें एवं इस बारे में विचार करें कि विदेशी शासकों ने समुदायों की बीच संतुलन बनाए रखने के लिए जिस (कथित) 'निष्पक्षता की भावना' को आवश्यक समझा था, उससे देश का कितना अहित हुआ है।[18] जब अंग्रेजों ने भारत को शासन की सत्ता सौंपी उस समय कश्मीर के दीवान श्री काक थे। लॉर्ड माउन्टबेटन ने देशी राज्यों को यह सलाह दी थी कि उन्हें भारत या पाकिस्तान दो में से किसी भी देश के साथ जुड़ जाना चाहिए। परन्तु कश्मीर राज्य ने इस सलाह की उपेक्षा की। वह किसी भी विभाग के साथ नहीं जुड़ा। महाराजा हरी सिंह के मन में वह महत्वाकांक्षा भी थी कि कश्मीर राज्य स्वतन्त्र और स्वाधीन रहे। परन्तु ऐसा होना असंभव था।[19] मि. जिन्ना कश्मीर को पाकिस्तान के अधिकार में लाने के लिए बहुत उत्सुक थे। उनकी पहले से ही इच्छा थी कि कराची से लेकर सिन्ध, पश्चिम पंजाब, सीमा प्रांत तथा भारत के उत्तर में स्थित काश्मीर–जम्मू–लद्दाख का पहाड़ी प्रदेश और फिर उसके आगे पूर्व बंगाल इस प्रकार पश्चिम से लेकर भारत की उत्तर सीमा का सारा भूभाग पाकिस्तान में मिला दिया जाय। ऐसा करके उन्हें इस प्रकार की परिस्थिति पैदा करनी थी कि भविष्य में भारत का नाम–निशां न रह जाय, वह नष्ट हो जाय और उसकी सारी सीमाएं मिट जाएं।

कश्मीर हमारे देश के नेताओं की दूरदर्शिता और बुद्धि–कौशल से इस खतरे से बाख गया। परन्तु एक पीड़ा अभी बांकी है। सरदार साहब का यह स्पष्ट मत था कि काश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ (यू.एन.ओ.) को न सौंपा जाय। सरदार पटेल ने जिस धीरज, शान्ति, चतुराई और शीघ्रता से हैदराबाद के मामले में सफलता प्राप्त की, उससे सारे जगत में भारतीय संघ की प्रतिष्ठा बढ़ी और

सरदार पटेल के जीवन–मन्दिर के शिखर पर सुवर्ण कलश चढ़ गया। उस समय से संसार ने अखंड भारत के निर्माता के रूप में उनका अभिनन्दन किया। देश के प्राचीन इतिहास में रामायण–महाभारत काल में, अशोक, चन्द्रगुप्त या अकबर के समय में तथा अन्त में ब्रिटिश साम्राज्य में भी भारत इतना एक और अखंड नहीं रहा।

सरदार पटेल में हैदराबाद की तर्ज पर कश्मीर समस्या का हल निकालने की दृष्टि थी। कश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ को सौंप दिया गया और उसके कारण आज भी हामारे सर पर कश्मीर की तलवार लटक रही है। लार्ड माउन्टबेटन की सलाह से पंडित नेहरू कश्मीर का प्रश्न यू. एन. ओ. के हाथ में सौंपने के लिए सहमत हो गए, जबकि पटेल वैसा नहीं चाहते थे। उनका एक व्यावहारिक सिद्धान्त यह था कि जहाँ तक हो सके, वादी के रूप में खड़ा न रहा जाय, हमेशा प्रतिवादी के रूप में ही न्यायाधीश के सामने खड़ा होना चाहिए। इतने वर्षों के बाद भी यू. एन. ओ. कश्मीर की समस्या का हल न कर सका।

सरदार पटेल को हिन्दू–मुस्लिम एकता प्रान्तों की तरह प्रिय थी। वे लोकतंत्र और कांग्रेस के इस सिद्धान्त के सच्चे उपासक थे कि भारत में धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना होनी चाहिए। इसलिए वे सब जातियों और कौमों को समानता की भावना से देखते थे। फिर भी जो लोग सिद्धान्त के विरुद्ध आचरण करते थे उन्हें सरदार बर्दाश्त नहीं करते थे। उनकी इस आदत के कारन कुछ लोग उनसे नाराज भी हो जाते थे। सरदार के बारे में गांधीजी से शिकायत तथा झूठ का सहारा लिया जाता था। क्योंकि गांधी का मानना थे कि 'वल्लभ भाई न तो पहले कभी कौमवादी थे, न आज हैं, मुझे पूरा विश्वास है कि वे ऐसा व्यवहार कभी नहीं करेंगे, जिससे मुसलमानों के साथ अन्याय हो। सरदार पटेल की गष्हमंत्री के रूप में मात्र चार वर्ष की अवधि राष्ट्रहित में सांप्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से प्रशंसित रही थी।

संदर्भ सूची

1. जकारिया, रफीक; सरदार पटेल तथा भारतीय मुसलमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ. 28.
2. वही
3. वही, पृ. 28–29.
4. चोपड़ा, पी. एन; दि सरदार ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1995, पृ. 19.
5. जकारिया, रफीक, पूर्वोक्त, पृ. 35.
6. वही, एस. आर; 'सरदार पटेल' हिज पालिटिज आइडियोलॉजी, पृ. 79. देखिये, जकारिया, रफीक, पूर्वोक्त, पृ, 35.
7. जकारिया, रफीक, पूर्वोक्त, पृ. 46.
8. शंकरदास, रानी धवन; 'बल्लवाभाई पटेल; पावर एंड आर्गेनाइजेशन इन इंडियन पालिटिक्स,' पृ. 2132–214,
9. जकारिया, रफीक, पूर्वोक्त, पृ. 46.
10. सिखाई, एच. एम; पार्टीशन ऑफ इण्डिया–लीजेण्ड रिएल्टी, मुम्बई, 1989, पृ. 134.
11. जकारिया, रफीक; दि वाइडनिंग डिबाइड–इन हिन्दू–मुसलमान, मुम्बई रिलेशन्स, पृ. 87.

12. चोपड़ा, पी. एन., दि सरकार ऑफ इंडिया, भाग–2, नई दिल्ली, पृ. 150.
13. जकारिया, रफीक; सरदार पटेल तथा भारतीय मुसलमान, नई दिल्ली, पृ. 78.
14. नेहरू द्वारा उद्धृत पटेल का प्रस्ताव, सरदार पटेल कोरस्पोडेंस, भाग–7, पृ. 670.
15. गांधी डायरी, सितम्बर, 1947, से जनवरी, 1948,
16. लोहिया, डॉ. राम मनोहर; गिल्टी मैन ऑफ इंडिया पार्टीशन, इलाहाबाद, 1960, पृ. 43.
17. मसानी, मीनू; डिल्स वाज इट इन वैट डॉन, ए. पोलिटिकल ममोयर अपटु इण्डीपेंडेंस, नई दिल्ली, 1977, पृ. 96.
18. मुंशी, के. एम. पिलग्रिमेज टू फ्रीडम, भाग–8, पृ. 208.
19. पटेल, रावजीभाई मणिभाई; हिन्द के सरदार, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2004. पृ. 300.